INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH AND TECHNOLOGY
ISSN 2582-7359
PEER REVIEW JOURNAL
IMPACT FACTOR 6.328

वैदिक संस्कृति में सामाजिक व्यवस्था का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. राहुल

सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र, गाँधी आदर्श महाविद्यालय, समालखा, पानीपत (हरियाणा)।

वेद संसार की प्राचीनतम ज्ञानराशि है। वेद अर्थात् ज्ञान है। वेद सृष्टि के ज्ञान-विज्ञान के आगार हैं। वेद से पुरातन साहित्य आज तक विद्वानों को उपलब्ध नहीं है। सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो. मैक्समूलर के शब्दों में – “Rigveda is the oldest book in the library of mankind” अर्थात् मानव पुस्तकालय की प्राचीनतम पुस्तक वेद है। वस्तुतः “वेद” संतप्त और दुःखी मानव जाति के लिये कल्याण का मार्ग बताने वाला दिव्य ग्रन्थ है। मानव मात्र को वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का ज्ञान कराकर उसे सुख, शान्ति और आनन्द का सच्चा मार्ग बताना ही वेदों का पवित्र उद्देश्य है। वस्तुतः वेद मानव सभ्यता का मूलस्रोत है और भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का प्राण है। वेद के आदेश और उपदेश हमें नीचे गिरने से ही नहीं बचाते अपितु निरन्तर ऊपर उठने की प्रेरणा भी देते हैं। यही कारण है कि वेद मानव मात्र को अमृत पुत्र कहकर पुकारता है – **शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः ।।**

वेद का परिशीलन सीमित नहीं है, वह देश-काल की संकुचित सीमाओं से कहीं अधिक विस्तृत है। अतः वेद में प्रतिपादित संस्कृति किसी एक स्थान अथवा काल की परिधि में बंधी हुई नहीं है। यह शाश्वत है और सार्वभौमिक है। युगों तक मानव मात्र का मार्गदर्शन करने को उसमें क्षमता है। यह सुनिश्चित तथ्य है कि यदि मनुष्य आज वैदिक संस्कृति एवं समाज के उदार एवं सर्वजन-कल्याणकारी नियमों का पालन करता है तो वह सभी संकटों एवं असंगतियों से दूर होकर पृथ्वी को स्वर्ग बना सकता है।

समाज शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक अज् धातु से सिद्ध होता है, जिसका अर्थ – मनुष्यों को एक साथ मिलकर एवं दूसरों का सहयोग करके जीवन यापन करने का नाम ही समाज है। सकल विश्व को वेद में एक समाज मानकर एक साथ चलने, बोलने तथा एक साथ विचार करने का उपदेश दिया गया है, जिससे समस्त प्राणिजगत साथ रहकर सुखपूर्वक जीवन-यापन कर सके। यथोक्तं –

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।।[1]

समस्त समाज में बन्धुत्व, मित्रता की भावना वैदिक समाजव्यवस्था का आदर्श है। इसलिए यह निश्चय व्यक्त किया गया है कि हम एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखते हैं – **“मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे”।**[2] यह एक व्यापक विश्व परिवार की वैदिक भावना है, जिसमें ऊँच-नीच का कहीं लेशमात्र भी अवकाश नहीं है। वैदिक संस्कृति के सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत परिवार रचना की कल्पना न ही जातिभेद के आधार पर है और न ही वंश परम्परा के परिधि के अन्दर है अपितु कर्म के अनुसार ही मनुष्य अपने धर्मत्व को प्राप्त करता है। वैदिक काल में समाज में किस प्रकार की व्यवस्था थी वह संकेत रूप में वर्णन करने का प्रयास किया है –

1. वर्ण-व्यवस्था –

प्राचीन भारत का समाज वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था। इस देश के चिन्तकों ने मानव-समाज को चार वर्गों या वर्णों में विभक्त किया था – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं। वर्णव्यवस्था का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। यथा –

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत्।।[3]

जिस प्रकार मुखमण्डल में मस्तिष्क है और सभी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, और वे शरीर को मार्ग दिखाने का तथा विभिन्न पदार्थों और परिस्थितियों के प्रति सचेत करने का कार्य करती हैं उसी प्रकार ब्राह्मण वर्ण समस्त समाज की उन्नति के लिए सोचता है तथा समस्त समाज को शिक्षित करता है। भुजाएँ जिस प्रकार आपत्ति आते ही प्रतिकार के लिए उठ जाती हैं, उसी प्रकार क्षत्रिय समाज की विपत्तियों तथा बाह्य आक्रमणों से रक्षा करता है। शरीर में जाँघें मनुष्य को आवश्यक पदार्थ जुटाने, कृषि आदि करने में तथा उसके द्वारा उदर पोषण में सहायता करती है, उसी प्रकार वैश्य का कार्य देश-विदेश में घूम कर समाज के लिए सभी प्रकार की आवश्यक सामग्री एकत्रित करना, कृषि, पशुपालन आदि करना होता है। सर्वान्तिके पाँव के आधार पर सम्पूर्ण शरीर खडा होता है, सर्वत्र चलने-फिरने में समर्थ होता है, तथैव शूद्र भी सकल समाज का आधार है। वह अपने श्रम द्वारा यथायोग्य सभी आवश्यक पदार्थों को सभी वर्गों के लिए उपलब्ध कराता है। इसी प्रकार वैदिक व्यवस्था का अर्थ गुण-कर्म है, न कि जाति।

2. गुरुकुल व्यवस्था –

वैदिक संस्कृति के सामाजिक जीवन में चार वर्णों के समान चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास) का भी बहुत महत्त्व था। प्रत्येक मनुष्य से यह आशा की जाती थी, कि वह अपना सारा जीवन सांसारिक झंझट में ही न बिता दे, अपितु ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और सन्यासी होकर अपना जीवन-यापन करे। मानव जीवन का अन्तिम ध्येय मोक्ष-प्राप्ति को माना जाता था, पर सांसारिक सुख भी हेय नहीं समझे जाते थे। महर्षि कणाद ने धर्म का लक्षण इस प्रकार निरूपित किया है – **“यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सः धर्मः”**[4] अर्थात् जिस द्वारा सांसारिक अभ्युदय और मोक्ष की सिद्धि हो वही धर्म है। गृहस्थ आश्रम में रह कर मनुष्य सांसारिक अभ्युदय करें, पर उसी को जीवन का परम लक्ष्य न मान लें। संसार का भोग कर स्वेच्छा पूर्वक उसका त्याग कर दिया जाये, और जीवन का अन्तिम भाग अध्यात्म-चिन्तन और परोपकार में व्यतीत किया जाये। इसी प्रयोजन ने मानव जीवन के सौ वर्षों को चार भागों या चार आश्रमों में विभक्त किया गया था।

3. अध्ययन-अध्यापन-पद्धति -

वैदिक युग में शिक्षा की पद्धति मौखिक शिक्षा प्रणाली पर आधारित थी, गुरु जो पाठ पहले दिन पढ़ाते थे उसको अगले दिन शिष्य से मौखिक रूप में सुना करते थे, तत्पश्चात् अगला पाठ पढ़ाया करते थे। शिक्षा के विषयों में शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक आदि सभी शक्तियों के विकास का समावेश होता था। प्राणायाम, योगविद्या, अस्त्र-शस्त्र विद्या, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गणित, ज्योतिष आदि इसी शिक्षा के विषय होते थे। वैदिक युगीन शिक्षा का उद्देश्य था – शिष्य का सर्वांगीण विकास करना। उसकी ज्ञान ज्योति को प्रबुद्ध करना, उसको प्रखर से प्रखर बनाना और उसके जीवन को सर्वथा सौभाग्यशाली बनाना।[5] सुशिक्षा की प्राप्ति हेतु वेद ने दो साधन बताये हैं – तप (कठोर अनुशासन) और दीक्षा (समर्पण)। प्राचीन शिक्षा पद्धति में संयम और चरित्र को भी बहुत महत्त्व दिया गया है। गुरु और शिष्य दोनों के लिये यह अनिवार्य गुण बताया गया है। तत्कालीन शिक्षा पद्धति का वर्णन करते हुए मनु महाराज कहते हैं कि –

एतत् देश प्रसूतस्य शकाशाद् अग्रजन्मनः । स्वं - स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्याः सर्व मानवाः।।

4. रहन-सहन व्यवस्था

वेदों के अध्ययन से यह ज्ञात हो सकता है कि तत्कालीन युग के लोग प्रायः तीन प्रकार के वस्त्र धारण किया करते थे – नीवि, परिधान और अधिवास।[6] इनमें सबसे नीचे पहनने के वस्त्र को नीवि कहा जाता था। संभवतः परिधान को वास भी कहा जाता था और ये वस्त्र कटि के नीचे पहना जाता था। अधिवास नामक वस्त्र कटि से ऊपर पहने जाने वाला वस्त्र होता था। अथर्ववेद में उपवास नामक एक अन्य वस्त्र का उल्लेख मिलता है, जिसको ओढ़ने की चादर के रूप में लिया जाता था।[7] वैदिक युग में विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग होता था। वेदों में तीन प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख है – सूती, रेश्मी और ऊनी। सूती वस्त्र के लिये वासस् शब्द है। रेश्मी वस्त्र के लिये तार्प्य शब्द है। यह वस्त्र तृपा नामक पौधे के तंतुओं से बनता था। ऊनी वस्त्र के लिये ऊर्णायु शब्द हैं।

5. भोजन व्यवस्था

तत्कालीन समाज का प्रमुख भोजन रोटी और दूध-दही था। जौ का सत्तू भी बनता था जो आर्यों का प्रिय भोजन था। अपूप, सत्तू और रोटी ये प्रमुख भोज्य पदार्थ थे। दूध प्रधान पेय था। आर्यों में दही, मक्खन आदि का प्रचुर प्रयोग होता था। यज्ञों में सोमरस का प्रयोग होता था। इसकी कटुता हटाने के लिये लोग उसमें दूध, दही या जौ का चूर्ण मिलाते थे, जिससे क्रमशः सोमरस को गवाशीः, दध्याशीः और यवाशीः कहते थे। सोमरस के पान से स्फूर्ति आती थी। इस प्रकार भोजन की दृष्टि से लोग सुखी, सम्पन्न तथा प्रसन्न रहते थे।

6. गृहनिर्माणविधि

वेदों में गृह के विभिन्न अर्थ प्रतिपादित किये गये हैं जैसे- गृह, आयतन, वास्तु, हर्म्य, दुरोण आदि। अर्थववेद में गृहनिर्माण की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। इसमें दो कमरे से लेकर दश कमरे वाले मकान के निर्माण का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में वर्णित उपमित शब्द से निर्देश है कि मकान नक्शे के अनुसार हो। प्रतिमित शब्द का निर्देश है कि मकान का नापतौल सर्वथा ठीक हो, और परिमित शब्द के निर्देश से द्वार आदि के यथास्थान विन्यास का सूचक है। कमरे आवश्यकता अनुसार दो से दस तक बनाये जायें। वेदों में प्रतिपादित गृहनिर्माण की पद्धति के अनुसार ये कमरे अवश्य बनवाने चाहियें, जैसे – हविर्धान, अग्निशाला,

पत्नी सदन, सदस्, देवसदन और स्नान, भोजन, ध्यान आदि का स्थान पृथक् होना चाहिये। इस प्रकार की कमनीय गृहशाला सुखदायक होती है।

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः । सदो देवानामसि देवि शाले ।।[8]

7. व्यापार

आरम्भ में अत्यन्त सीमित व्यापार प्रथा का प्रचलन था। व्यापार विनिमय पद्धति पर आधारित था। समाज का एक वर्ग 'पणी' व्यापार किया करते थे। राजा को नियमित कर देने या भू-राजस्व देने की प्रथा नहीं थी। राजा को स्वेच्छा से भाग या नजराना दिया जाता था। पराजित कबीला भी विजयी राजा को भेंट देता था। अपने धन को राजा अपने अन्य साथियों के बीच बांटता था। खेती के लिये और समाज को अच्छे ढ़ंग से चलाने के लिये विविध प्रकार के साधन और वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। ये साधन और वस्तुएँ उद्योग से ही उत्पन्न होती हैं। ऋग्वेद में एक प्रार्थना आती है – **चोदय धियमयसो न धाराम्।**[9] अर्थात् हे प्रभो। मेरी बुद्धि को लोहे से बने शस्त्र की धार के समान अति तीक्ष्ण बना। इससे स्पष्ट किया जा सकता है कि उद्योग से निर्मित इन वस्तुओं का वेद में निर्देश अवश्य हैं।

8. ग्राम-व्यवस्था

अनेक मंत्रों में ग्राम का उल्लेख है। ग्राम में भी सभा और समितियाँ होती थीं। ग्राम प्रधान को ग्रामणी कहते थे। उसका विधिवत् अभिषेक होता था। ग्रामणी राजा के निर्वाचकों में एक होता था। ग्रामणी का पद सम्मान जनक माना जाता था। वैदिक ग्रामों में गृह शिल्पों का प्रचलन था। बढई, कुम्हार, मिस्त्री, नाई, सुनार, लुहार, वैद्य और धोबी आदि सभी ग्रामों में होते थे। स्त्रियां ऊन कातना, सूत कातना, वस्त्र बनाना, वस्त्रों को रंगना, वस्त्रों पर बेल-बूटे का काम आदि करती थीं। ग्रामों की आजीविका का मुख्य साधन कृषिकर्म तथा दुग्ध व्यवसाय था।

9. दूत और चर-व्यवस्था

ऋग्वेद में अश्विनों को दूत के समान यशस्वी कहा है – **दूतेव हि ष्ठो यशसा जनेषु।**[10] इससे प्रकट होत है कि वैदिक साहित्य में दूत-पद एक प्रतिष्ठित पद माना जाता था। प्रायः अग्नि को प्रजा द्वारा वरण किया हुआ दूत कहा गया है – **अग्ने दूतो विशामसि।**[11] अग्निपद अग्रणी मेधावी विप्रों का वाचक है। दूतकार्य के लिये विशेष प्रतिभा-सम्पन्न अगुआ व्यक्ति ही उपयुक्त समझा जाता था। इस प्रकार वैदिक शासन-व्यवस्था में दूत-व्यवस्था को भी आवश्यक और उपयोगी समझा गया था। यहाँ लिंग-भेद का कोई स्थान नहीं है। पुरुष के समान नारी भी दूत-पद पर नियुक्त की जा सकती है। दूत को मित्र, वरुण और अर्यमा के समान माना गया है। भाव यह है कि दूत मित्र देव के समान न्यायकारी होना चाहिये। **दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै**[12] इस मन्त्र के अनुसार सन्देश वहन करने और उसके प्रस्तुत करने में विलम्ब न करना दूत का विशेष गुण है।

10. यातायात के साधन

वैदिक काल में यातायात के साधनों में रथ प्रमुख था। यह यातायात क्रीड़ा और युद्ध दोनों में प्रयुक्त होता था। रथ में दो, तीन या चार घोडे तक जोते जाते थे। इस समय रथ के अतिरिक्त अनस् (बैलगाड़ी, शकट, सग्गड़) भी यातायात का साधन था। कृषि का अन्न, ईख, कुश आदि बैलगाड़ी से ढोया जाता था। वेदों में जलयान (जहाज) का भी व्यापार आदि के लिये बहुत उपयोग होता था। वेद में शकट, विमान, चित्ररथ,

देवरथ, वायुरथ, विद्युद्रथ, प्रतिरथ, वरूथी, सुपर्ण, श्येन, गरुत्मान् आदि अनेक प्रकार के बाहन, यान, विमान आदि का वर्णन है। उनका सैन्य एवं युद्ध में पर्याप्त उपयोग होता था।[13]

11. कृषि

सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण में कृषि की समस्त प्रक्रियाओं का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के प्रथम और दसम मंडलों में बुआई, जुताई, फसल की गहाई आदि का वर्णन है। ऋग्वेद में केवल यव (जौ) नामक अनाज का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के चौथे मंडल में कृषि का वर्णन है। परवर्ती वैदिक साहित्यों में ही अन्य अनाजों जैसे- गोधूम(गेंहू), ब्रीही (चावल) आदि की चर्चा की गई है। काठक संहिता में 24 बैलों द्वारा हल खींचे जाने का, अथर्ववेद में वर्षा, कूप एवं नाहर का तथा यजुर्वेद में हल का 'सीर' के नाम से उल्लेख है। उस काल में कृत्रिम सिंचाई की व्यवस्था भी थी। मनुष्य की आन्तरिक शक्तियाँ सबसे पहले भोजन-व्यवस्था के लिये ही क्रिया में आती हैं और मनुष्य ने सर्वप्रथम जिस कला का आश्रय लिया था वह निश्चय ही कृषि होगी।[14] वेदों से पता लगता है कि वैदिक युग में कृषि-कर्म अत्यन्त ही पवित्र माना जाता था। ऋग्वेद में कितने ही स्थलों पर खेत जोतने का, हल चलाने का और फसलों से हरे-भरे खेतों का वर्णन है। ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण सूक्त में कृषि का वर्णन है तथा वहाँ क्षेत्रपति की स्तुति की गयी है। वैदिक उपजाऊ भूमि को बराबर नपे हुये खेतों में बांटा भी जाता था।[15] साधारणतया हल में दो बैल जोते जाते थे, किन्तु कभी-कभी छः[16], आठ, बारह[17] या चौबीस[18] भी जोते जाते थे।

12. नारी की स्थिति

वैदिक समाज नारी को अबला नहीं मानता। वह वीर स्वामी की स्त्री और वीर पुत्रों की माता है। उसमें विरोधी गुणों का अपूर्व समन्वय दृष्टिगत होता है। विनय, शालीनता, लज्जा, स्नेह जैसे कोमल मधुर गुणों के साथ वह रणकुशल एवं शक्ति रूपिणी भी होती है।

हम देखते हैं कि वेद का नारी विषयक दृष्टिकोण अत्यन्त उदार है। उसकी दृष्टि में नारी ईश्वर की महान् संरचना है। नारी घर में रहकर बाहर की समस्त कल्मषताओं से बची रह कर अपने पति अथवा पुत्र को ऐसे निर्देश करती है कि वे भी किसी पापपूर्ण कर्म में प्रवृत्त न हों। सन्तान के पूर्ण योग्य बनाने की क्षमता माँ में है, पिता में नहीं। वैदिक साहित्य व्यक्तिगत उन्नति से समष्टिगत उन्नति के सिद्धान्त को स्वीकार करता है। नारी घर को स्वर्ग बनाने में समर्थ है। वस्तुतः मानव जाति का उत्कर्ष नारी-जाति की समुचित उन्नति में निहित है।

13. शासन-पद्धतियाँ

ऐतरेय ब्राह्मण में आठ प्रकार के राज्य-शासन के संविधानों का वर्णन आता है। यथोक्तं – **स्वस्ति। साम्राज्यं, भोज्यं, स्वराज्यं, वैराज्यं, पारमेष्ठ्यं, राज्यं, महाराज्यं, आधिपत्यमयम्। सामन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमः सार्वायुष आन्तादापरार्धात्, पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकविराट्।**

अर्थात् सब जनता का कल्याण हो। साम्राज्य, भोज्य, स्वराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य, राज्य, महाराज्य, आधिपत्यमय पृथक-पृथक् राज्यशासन के विविध प्रकार हैं। सार्वभौम सम्राट् पूर्ण आयु तक जीवित रहे और समुद्र पर्यन्त पृथिवी का एक राजा हो। इन आठ प्रकार के शासन-पद्धतियों से तत्कालीन समाज सुशिक्षित एवं समृद्ध होता हुआ अग्रगण्य होता था।

14. यज्ञ-व्यवस्था

संसार में विद्यमान सम्पूर्ण मानव जगत के लिए यज्ञ अत्यन्त आवश्यक है। चाहे वह किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो परन्तु यज्ञ का विधान मनुष्य को प्रतिदिन करना चाहिए। प्राचीन काल में प्रत्येक मनुष्य यज्ञ करता था। किसी भी कार्य को शुरु करने से पूर्व यज्ञ का विधान किया जाता था। तत्कालीन समाज में युद्ध के लिये भी यज्ञ करते थे। यज्ञ की महत्ता एवं सारगर्भिता को शब्दों में अभिव्यक्त किया जाना सम्भव नहीं है, क्योंकि वैदिक वाङ्मय में यज्ञ की विशेषताओं तथा उपयोगिताओं पर नाना प्रकार से प्रकाश डाला गया है। यज्ञ को सम्पूर्ण नाभि के रूप में वर्णन किया गया है। यथोक्तं – **अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।**[19] यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा गया है।[20] यज्ञ को सर्वस्व कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है क्योंकि यज्ञ लौकिक एवं पारलौकिक ऐषणाओं का पोषक है। यज्ञ से उत्तम सन्तति, पशु धन, आत्मज्ञान एवं अन्न की प्राप्ति होती है।[21] अतः यज्ञ चराचर विश्व का महत्त्वपूर्ण सोपान है।

15. विवाह संस्कार

वैदिक युग के आर्य विवाह को एक धार्मिक कृत्य मानते थे। मानव-जीवन को जिन चार आश्रमों में विभक्त किया गया था उसमें गृहस्थ-आश्रम को सबसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वैदिक युग के साहित्य में गृहस्थ के महत्व को प्रकट करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार छोटी और बड़ी सब नदियाँ समुद्र में जाकर आश्रय ग्रहण करती हैं, वैसे ही सब आश्रमों के मनुष्य गृहस्थ से ही आश्रय़ प्राप्त करते हैं। गृहसूत्र में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया गया है यथा - ब्रह्म विवाह,दैव विवाह, आर्ष विवाह, प्राजापत्य विवाह, गांधर्व विवाह, असुर विवाह, राक्षस विवाह और पैशाच विवाह - इसमें प्रथम चार उत्कृष्ट विवाह माने जाते थे तथा अंतिम चार निकृष्ट।

16. वैदिक सैन्य-व्यवस्था

वेद असत् पर सत् की विजय के लिये युद्ध का सन्देश देता है। इन्द्र-वृत्र युद्ध इसी बात का प्रतीक है। इन्द्र-वृत्र के भयंकर युद्धों का वर्णन कर वेद ने उन्हें स्वयं माया कह दिया – माया इत् सा ते यानि युद्धान्याहुः। पाप की पराजय और पुण्य की विजय मानवता की महती पोषिका है। वीरों के साथ रहने वाला वीर सेनाओं में उग्र शूरवीर होता है और शत्रु का पराभव करने वाला होता है। सेना के साथ रहने से साधारण मनुष्य भी उग्र शूरवीर बनकर शत्रु का पराभव करने वाला बन जाता है – यह शैन्य अनुशासन का प्रभाव है। सेना में रहने से वीरों की संरक्षण शक्ति कम नहीं होती, अपितु बढती है – **न हि व ऊतिः पृतनासु मर्धति।**[22] वीरों का बल सेनाओं में बडा उग्र दीखता है। उपर्युक्त वर्णन से यह बात सिद्ध हो जाता है कि वैदिक ऋषि काल में सैन्य था, सेना में वीरों की भरती होती थी, उन सबका मिलकर एक गण-वेष था और सबके अस्त्र-शस्त्र यथायोग्य थे।

उपसंहार –

वैदिक वाङ्मय के गूढ़ ज्ञान से मनुष्य अध्यात्म ज्ञान का शिरोमणि एवं ब्रह्म प्राप्ति का पात्र होता है। यह विपुल वैदिक वाङ्मय भारतीय जन-जीवन, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, ज्ञान-विज्ञान, नैतिक-उच्चादर्शों, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं साहित्यिक पृष्ठ-भूमि का मूल स्त्रोत है। वेद-वेदाङ्गों के सार को जानने वाला मनुष्य अपने मार्मिक ज्ञान से समाज व राष्ट्र को आलोकित कर सकता है। ठीक इसी प्रकार प्राचीन

काल के मनुष्य वेदोक्त रीति का अनुकरण करते हुए एवं इन्हीं सामाजिक व्यवस्थाओं से व्यवस्थित रहकर अलौकिक आनन्द को प्राप्त करते थे।

---

[1] ऋग्वेद -10.19.1
[2] यजुर्वेद -16.18
[3] ऋग्वेद -10.90.12
[4] वैशेषिक सूत्र 1.1.2
[5] अर्थववेद - 7.16.1
[6] वही - 8.2.16
[7] वही -14.12.49
[8] वही – 9-3-7
[9] ऋग्वेद- 6-47-10
[10] वही – 10-106-2
[11] वही – 1-36-5
[12] वही -5-43-8
[13] पं. वीरसेन वेदश्रमी, वैदिक सम्पदा, पृ. - 310
[14] पं. गंगाप्रसाद उपध्याय – वैदिक संस्कृति, पृ. 87
[15] क्षेत्रमिव वि ममस्तेजनेनं – ऋग् 1-110-5
[16] अथर्ववेद – 6-91-1
[17] तैत्तिरीय सं.- 1-8-7-1
[18] काठक सं – 25-2
[19] अथर्ववेद – 9.5.10.14
[20] यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। शत. ब्रा. 1.7.4.5
[21] आ. गृ. – 1.10.12
[22] वही – 7-59-4